© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 04 , Issue : 02 | January – March 2018

धूमिल के काव्य में व्यंग्य–परम्परा

**सविता रानी, कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय,
गांव–किरतान जिला हिसार (हरियाणा)**

शोध–आलेख सारः–

जिस समय से साहित्य सृजन का आरम्भ हुआ, उसी समय से व्यंग्य का भी आरम्भ हो गया। साहित्य में व्यंग्य कुछ इस भाँति घुला–मिला रहा है जैसे दूध में मक्खन रहता है। उसका पृथक अस्तित्व स्पष्ट न होते हुए भी वह अपना प्रभाव छोड़ता रहा है और लक्ष्य–सिद्धि प्राप्त करता रहा है। हालांकि प्रतिभावान लेखक तथा कवि तो दिन–रात इसके सृजन में लगे हुए थे। व्यंग्य साहित्य की विधाओं के साथ बेल के समान लिपटकर कभी महाकाव्यों में, तो कभी काव्यों में तो कभी उपन्यास में, तो कभी कहानी में, कभी नाटक में, तो कभी निबंध में उभरता रहा है। अब हम धूमिल के काव्य में व्यंग्य–परम्परा का वर्णन करते हैं।

(मुख्य शब्दः– ग्लानि, आत्मपरक, अप्रौढ़ता, बौद्धिक)

हिन्दी साहित्य में विशेषतः खड़ी बोली में तो व्यंग्य की बाढ़ सी आ गयी है। आमतौर पर हर कवि की रचना में व्यंग्य मिलता है। आज तो हालत ऐसी है कि बिना व्यंग्य कविता को पाठक, श्रोता पढ़ने तथा सुनने के लिए तैयार ही नहीं है।

साठोत्तर काल के व्यंग्य कवि धूमिल की कविता में विकृति, प्रदर्शन, अन्याय, अत्याचार के संदर्भ में व्यंग्य किया गया है।

धूमिल की कविता पाठक को रिझती नहीं वह तो उद्विग्नता, खीझ, आत्म–ग्लानि, उत्पन्न करती है। इन के व्यंग्य काव्य में युग की सच्चाई व्यक्त हुई है। इसी कारण अशोक वाजपेयी, धूमिल को विचार का कवि कहते हुए लिखते हैं, ''धूमिल की कविता केवल भावात्मक स्तर पर नहीं बल्कि बौद्धिक स्तर पर भी सक्रिय होती है।[1]

धूमिल अपनी कविता 'मोचीराम' में व्यंग्य करते हुए लिखते हैं,

**''बाबू जी! सच कहूँ– मेरी निगाह में,
न कोई छोटा है, न कोई बड़ा,
मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जूता है,
जो मेरे सामने,
मरम्मत के लिए खड़ा है।''[2]**

इन पंक्तियों में धूमिल पाठक को सोचने पर बाध्य करते हैं। इसमें भावात्मक स्तर तो है बल्कि बौद्धिक स्तर भी सक्रिय दिखाठ देता है।

वैसे तो धूमिल पर बहुआयामी न होने का आरोप है, लेकिन वह धूमिल की कमजोरी नहीं लाचारी है और यह सच्ची समझदारी भी है कि हथौड़ा वहाँ मारो जहाँ लोहा लाल हो, औषधि का उपयोग वहां हो जहाँ रोग की जड़ हो और धूमिल ने यही किया। इसी प्रकार धूमिल के काव्य में व्यंग्य अनेक स्तरों पर उभरे हैं।

व्यंग्य का वर्गीकरण बहुत आसान नहीं है, फिर भी अध्ययन की सुविधा के लिए 'प्रेरणा' और

[1]धूमिल– संसद से सड़क तक (फ्लॉप से अशोक वाजपेयी)
[2] धूमिल– संसद से सड़क तक, पृ.–37

'प्रभाव' की दृष्टि से इसे वर्गीकृत करने का प्रयास वैज्ञानिक ढंग से डॉ. शेरगंज गर्ग ने किया है।[3] इसी आधार पर धूमिल की कविताओं में व्यंग्य की पड़ताल और परख की जा सकती है।

वैयक्तिक व्यंग्य (आत्मपरक):–

धूमिल ने अपनी रचनाओं में अल्प मात्रा में ही आत्मपरक व्यंग्य लिखा है, लेकिन उसका भी अपना खास महत्व है, क्योंकि उसके माध्यम से उसने जीवन–जगत की कई विसंगतियों की ओर संकेत दिया है। धूमिल ने मानव–जीवन की अंधी ढलान पर व्यक्तित्व के सूखे कंकाल से लदी बैलगाड़ियाँ देखी हैं जो व्यवस्था की बहस में तो शामिल हैं पर विरोध में नहीं। धूमिल इसलिए कहते हैं–

"जब, सड़कों में होता हूँ,
बहसों में होता हूँ,
रह–रह चहकता हूँ,
लेकिन हर बार वापस घर लौटकर,
कमरे के अपने एकांत में,
जूते से निकाले गये पाँव–सा
महकता हूँ।"[4]

धूमिल अपने पर व्यंग्यकार वैसे लोगों को उसका निशाना बनाते हैं जो आत्मपरक सुख की तलाश में तल्लीन रहते हैं।

साहित्यक व्यंग्यः–

कविता और कविता की भाषा के संदर्भ में धूमिल की दृष्टि बहुत साफ थी। इस क्रम में उसने अपना एक निष्कर्ष दिया है–

"छायावाद के कवि शब्दों को तोलकर रखते थे,
प्रयोगवाद के कवि शब्दों को टटोल कर रखते थे,
नई कविता के कवि शब्दों को गोल कर रखते थे,
सन् साठ के बाद के कवि शब्दों को खोलकर रखते हैं।"[5]

सामाजिक व्यंग्यः–

पूर्व में संकेत दिया जा चुका है कि धूमिल की पैनी–नजर देश की सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियों पर सबसे अधिक टिकी है। इसीलिए उसकी रचनाओं में सामाजिक विसंगतियों से संबंधित व्यापक व्यंग्य उभरे हैं।

धूमिल कविता की अप्रौढ़ता के बहाने शहर की एक भयंकर त्रासदी की ओर संकेत करते हुए अपनी 'कविता' शीर्षक कविता में लिखता है–

"एक संपूर्ण स्त्री होने के पहले ही,
गर्भाधान की क्रिया से गुजरते हुए,
उसने जाना कि प्यार,
घनी आबादी वाली बस्तियों में,
मकान की तलाश है।"[6]

---

[3] स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, पृ.–69
[4] संसद से सड़क तक, पृ.–23
[5] कल सुनना मुझे, भाषा की रातः धुमिल की भूमिका, पृ.–1

निष्कर्षः–

सचमुच धूमिल ने अपनी कविताओं में शब्दों को खोलकर रखा है। वह काव्यभाषा को कलाबाजी के धुंधले रंग में लपेटकर भाव को बाधित करने के पक्ष में नहीं रहा। उसने हमेशा इसका ध्यान रखा कि वह जिनके लिए लिख रहा है, कविता उनसे दूर न जाये। इसीलिए कविता की एक खास भाषा मानने वालों का वह सदा विरोध करता रहा। परिणामस्वरूप उसकी कविताओं में भाषा और भाव के संदर्भ कई स्थलों पर व्यंग्य मुखरित हो गए हैं।

संदर्भ–सूची

1. डॉ. इन्द्रनाथ– 'आधुनिक और हिन्दी उपन्यास', राजकमल, नई दिल्ली, 1990
2. धूमिल–संसद से सड़क तक– राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1972
3. डॉ. रामशकल बिंद – 'हिन्दी व्यंग्य कविता और धूमिल', शिवहरि प्रकाशन, दिल्ली, 2008
4. डॉ. बळीराम राख– 'आधुनिक हिन्दी व्यंग्य निबंधों में सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक चेतना', चन्द्रलोक प्रकाशन कानपुर, 2016

[6] संसद से सड़क तक, पृ.–7